Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 11 ~ Issue 8 (2023) pp: 423-426
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

बिहार की राजनीति की सामाजिक पृष्टभूमि

सारंग तनय

शोध छात्र, राजनीति शास्त्र विभाग, बी. एन. एम. यू. मधेपुरा, बिहार

सार

भारत ही नहीं वरन् संपूर्ण विश्व जिन प्रवृतियों से संघर्षरत है, उसे केवल बिहार की विशेषताओं के रूप में तो रेखांकित किया ही जाता रहा है, साथ ही साथ इसे एक ऐसे जर्जर होते हुए राज्य के रूप में रेखांकित करने के प्रयास होते हैं, जो अपनी चुनौतियों से जूझते हुए थक–सा गया है।1 वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता हैं कि इस राज्य को केवल आर्थिक पिछड़ेपन, सामाजिक असमानता, चुनावी अराजकता और सांस्कृतिक अधोपतन से संबद्ध भयावह कहानियों के स्रोत के रूप में परिकल्पित किया जाता रहा है और इसलिए, इस बात से सहमति जताने में किसी प्रकार की कोई शंका नहीं होती है कि इसे एक 'अंधेर नगरी' के रूप में पेश करने के प्रयास होते रहे हैं।

विस्तार

संभवतः बिहार के बारे में भ्रामक जानकारियों को प्रचारित करने और इस अति–पूर्वाग्रही मानसिकता के साथ, निहायत ही गलत ढंग से प्रस्तुत करने के कारण ही अस्तित्व में आये हैं। किन्तु 20 वर्षों और करीब उससे भी अधिक अवधि के दौरान इन तथाकथित परिकल्पनाओं और धारणाओं में निश्चित रूप में परिवर्तन लक्षित हुए हैं और निरंतर हो रहे हैं, जैसे कि आर्थिक पिछड़ेपन में धीरे–धीरे कमी का आकलन लिया जा रहा है, हिंसक चुनावी गतिविधियों, जैसे–मतदान–केंद्रों को लूटने की घटनाएँ वर्ष 2014 में न के बराबर हुई हैं, जो मतदान–केन्द्रों के कुशल प्रबंधन के द्वारा ही संभव हो सका है। अब जिस प्रकार की मतदान–प्रणाली और प्रबंधन भारत के अन्य भागों में व्यवहार में लायी जा रही है, कमोबेश वैसी ही व्यवस्था बिहार में भी लागू है और निश्चित रूप से बिहार इस संदर्भ में अब अपवाद नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त, इसकी संभावनाएँ भी बन रही हैं या यों कहें कि दिन–प्रतिदिन बलवती होती जा रही है कि राज्य की राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता में जातिगत संघर्षों को भी अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित तथा सशक्त विधि संस्थागत किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास हो रहे हैं। वस्तुतः इस तथ्य से पूर्ण सहमति व्यक्त करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि राजनीतिक सत्तालोलुपता और राजनीति करने की अदम्य लालसा ही उपर्युक्त तत्वों को बनाये रखने के लिए जिम्मेदार हैं और संभवतः राजनीति में ऐसे व्यवहार के लिए प्रेरित भी करती है।

सामाजिक–राजनीतिक मुद्दों के प्रति मतदाता की राजनीतिक प्राथमिकताओं, दृष्टिकोण और राजनीतिक अभिमुखता या झुकाव का निर्धारण उसका सामाजिक परिवेश कैसा है– इस आलोक में तय होता है जिसमें वह निवास करता है। इस संदर्भ में विद्वानों के अध्ययन ने भी ऐसे 'सामाजिक परिप्रेक्ष्य' के नियामक होने की पुष्टि की है, जिसके माध्यम से मतदाता अपने–अपने 'चुनावी व्यवहार' और राजनीतिक प्राथमिकताओं के स्वरूप का निर्धारण करते हैं।2 इस प्रकार के ग्रहण किये गये सामाजिक लक्षण एवं प्राथमिकताएँ, मतदाताओं के मतदान करने की अवधि के दौरान उनके व्यवहार में भी दृष्टिगत होते हैं। मसलन, उनकी किसी राजनीतिक–विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता या किसी राजनीतिक दल के समर्थन का आधार अथवा किसी उम्मीदवार के समर्थन में उनके तर्क। फिर, राजनीतिक वरीयताएँ प्राथमिक समाजीकरण के द्वारा भी प्रभावित होती है, वस्तुतः प्राथमिक समाजीकरण व्यक्तिगत अनुभव ही होता है, जो एक व्यक्ति प्रथमतः अपने घर पर और तत्पश्चात अपने साथियों/सहकर्मियों के बीच प्राप्त करता है।

चुनाव में मतदान करते समय मतदाताओं के व्यवहार को ही 'चुनावी व्यवहार' कहा जाता है। किन्तु, वास्तविक अर्थों में इसमें मतदाताओं से संबंधित अनेक पक्षों का समाहार होता है। वस्तुतः 'चुनावी व्यवहार' के अंतर्गत मतदाताओं की राजनीतिक उन्मुखता या झुकाव एवं किसी राजनीतिक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता और मतदाता के रूप में व्यवहार जैसे तत्व समाहित होते हैं। यह कथित व्यवहार वस्तुतः अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है, जैसे– सामाजिक वर्ग, लिंग, नस्ल, धार्मिक उन्मुखता या झुकाव और सामाजिक अस्मिता।3 इस संदर्भ में, सामाजिक–वैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के मतदाताओं के रूप में उनके व्यवहार तथा उनकी सामाजिक–स्थितियों के बीच व्यापक संबंधों की पड़ताल की है और यह निष्कर्ष स्थापित किया है कि व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूहों की सामाजिक स्थितियों में अंतर के कारण उनकी समस्याएँ भिन्न–भिन्न मुद्दों से संबंधित होती हैं, जो उनके द्वारा राजनीतिक दलों को दिये गये समर्थन में प्रतिबिंबित होता है, जो

स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। दरअसल, विभिन्न परिवेश में रहने के कारण उनकी समस्याएँ, निर्णय करने की प्रतिभा तथा दृष्टिकोणों में अंतर होता है। यही अंतर उनके किसी राजनीतिक दल तथा विचार के प्रति प्रतिबद्ध होने में प्रदर्शित होता है। समस्याओं तथा मुद्दों की यही विविधता, राजनीतिक दलों की उपस्थिति के आधार हैं, जो मतदाताओं की चिंताओं, समस्याओं तथा मुद्दों को सुलझाने के हिमायती होते हैं या कम–से–कम ऐसा करने का दावा करते हैं। इस प्रकार, यह कमोबेश स्पष्ट ही है कि किसी विशेष निर्धारित अविध में होने वाले चुनावों से तत्कालीन सामाजिक विशेषताओं का तो पता चलता ही है, किन्तु इसके साथ ही इसके स्याह पक्षों की भी जानकारी होती है। बहरहाल, भारत 29 प्रांतों को समाहित किये हुए एक ऐसा विविध राष्ट्र हैं, जिसमें राज्यों का कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, अर्थात् भारत एक अखंड राष्ट्र है और यह राज्यों से समझौतों का परिणाम नहीं है। भारत में राज्यों की संप्रभुता और अस्तित्व की कोई गारंटी नहीं है।

तालिका 1

बिहार राजनीतिक दृष्टिकोण से अतिव्यापक–विविध है। इसलिए इसे पांच क्षेत्रों में बांटा गया है– तिरहुत, मिथिला, मगध, सीमांचल और भोजपुर।

क्षेत्र	जिला
तिरहुत	वाल्मीकि नगर, पश्चिम चंपारण, पूर्वी चंपारण, गोपालगंज, सीवान, महाराजगंज, सारण, हाजीपुर, वैशाली, मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी और शिवहर
मिथिला	मधुबनी, झंझारपुर, दरभंगा, उजियारपुर, समस्तीपुर, सुपौल, सहरसा एवं मधेपुरा
मगध	पटना साहिब, पाटलिपुत्र, जहानाबाद, मुंगेर, बेगूसराय, नालंदा, औरंबागाद, काराकाट, नवादा, जमुई और गया
सीमांचल	अररिया, किशनगंज, पूर्णिया, बांका, भागलपुर और खगड़िया
भोजपुर	आरा, बक्सर, सासाराम

बिहार को भारत के अनेक राज्यों में एक ऐसे राज्य के रूप में संबोधित किया जा सकता है, जो राजनीतिक रूप से सर्वाधिक गतिशील है या यों कहें कि जिसके जन–मानस के अंग–प्रत्यंग में राजनीति मानो रची–बसी हुई हो। यह राज्य राजनीतिकरण के उच्चतम शिखर पर प्रतिष्ठित है। दरअसल, राजनीति के उच्चतम शिखर के उल्लेख से अभिप्राय है– राजनीति के विविध पहलुओं के ज्ञान का उच्च–स्तर और इसकी गहरी समझ तथा स्वतंत्र राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्त करने की सामान्य और स्वाभाविक प्रवृत्ति।

क्षेत्रः

पटना बिहार की राजधानी है, जहां से सरकार कार्य करती है। यह राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र भी है। गंगा के तट पर अवस्थित पटना राज्य के मगध क्षेत्र के अंतर्गत आता है। राजनीतिक रूप से जीवंत और सामाजिक रूप से जागरूक और सजग होने के अतिरिक्त बिहार भौगोलिक रूप से भी राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के साथ एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक–राजनीतिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। राज्य को मोटे तौर पर पांच मुख्य क्षेत्रों में बांटा गया है– तिरहुत, मिथिला, मगध, भोजपुर और सीमांचल (पूर्व)। ये वर्गीकरण वस्तुतः सांस्कृतिक दृष्टिकोण से किये गये हैं, किन्तु इसका प्रयोग राजनीतिक–प्रथाओं के अध्ययन के लिए भी होता है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी स्वयं की एक विशेष सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों की परंपरा रही है, जो एक भाषा में, लेकिन नितांत अलग लहजे में व्यक्त की जाती है।4

राज्य के मिथिला क्षेत्र में हिन्द–आर्य भाषा परिवार की मैथिली भाषा बोली जाती है। जबकि भोजपुर क्षेत्र में भोजपुरी मुख्य भाषा है, जो लोगों द्वारा बोलने के लिए व्यवहार में लायी जाती है। बिहार की राजधानी पटना है और इससे संबद्ध आसपास का क्षेत्र मगध के रूप में जाना जाता है और इस क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा मागधी है। इस राज्य का प्रत्येक क्षेत्र कुछ जाति–समूहों के राजनीतिक और सामाजिक वर्चस्व के लिए होनेवाली संघर्ष से प्रभावित रहा है, जो उस विशेष जाति समुदायों के संख्या–बल और राजनीति को प्रभावित करने की उसकी स्थिति या योग्यता से निर्धारित होती है।5 वस्तुतः ये जाति–समूह भिन्न–भिन्न राजनीतिक दलों से जुड़ गये हैं और इस प्रकार, विभिन्न क्षेत्र उन राजनीतिक समूहों के गढ़ बन गये हैं।

*Corresponding Author: सारंग तनय

जातिः

प्रत्येक राज्य की एक बनावट होती है, जैसे– राजनीतिक बनावट, सामाजिक बनावट, भौगोलिक बनावट इत्यादि। बिहार की आबादी की बनावट पर गौर करें, तो इसमें भिन्न–भिन्न जातियां हैं। बिहार की राजनीति में जाति हमेशा से ही अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण रही है। राजनीतिक दल इसका अपने सामाजिक और राजनीतिक आधार के रूप में व्यवहार करते रहे हैं और यह अब भी बदस्तूर जारी है। दूसरे शब्दों में कहे, तो राजनीतिक दल अपनी सामाजिक और सियासी जमीन बचाने के लिए इसका उपयोग करते हैं। यह उनका मूलभूत आधार है, जिस पर वे अपने राजनीतिक मंसूबों की इमारत खड़ी करते हैं। बिहार की राजनीति में जाति की इतनी सघन केंद्रीयता है कि इसके आधार पर यह भी तय होता है कि टिकट कैसे वितरित किये जाएँ और चुनाव के पश्चात मंत्रालयों का आवंटन भी ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

बहरहाल, बिहार में चुनावी–राजनीति दो व्यापक संदर्भों में देखी जा सकती है– स्वतंत्रता के बाद जाति के आधार पर राजनीति और वर्ष 1990 के बाद की अवधि के दौरान 'मंडलीकरण' और उसके पश्चात् जाति की राजनीति। वर्ष 1990 के पहले बिहार के सामाजिक एवं राजनीतिक क्षितिज में उच्च–जातियों का सितारा चमक रहा था। सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इन जातियों का वर्चस्व था। हिंदुओं में ब्राह्मणों, राजपूतों, भूमिहारों और कायस्थों तथा मुस्लिमों में सैयदों, शेखों और पठानों ने संपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश पर अपनी प्रभुता स्थापित कर ली थी। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन परिवेश में बिहार का समाज स्तरीकरण के दृष्टिकोण के पांच वर्गों में विभाजित था। हिंदू जहां तीन स्तरों पर विभाजित थे, वहाँ मुस्लिम भी दो स्तरों पर वर्गीकृत किये जा सकते थे।

हिंदुओं को उंची जातियों, पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों में विभाजित किया जाता है, जबकि मुस्लिम उपरी जातियों और पिछड़ी जातियों में वर्गीकृत है। हिंदुओं में ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार जैसे जातियां उच्च–वर्ग की जातियों के रूप में संबोधित की जाती हैं। जबकि चमार, दुसाध और मुसहर अनुसूचित जातियां हैं, जिन्हें अछूत भी माना जाता है। अछूत या अस्पृश्यता जैसी आदिमकालीन वृत्ति बिहार के कुछ हिस्सों में अभी भी मौजूद हैं। यह वहाँ के लोगों के लिए एक प्रथा–सी बन गयी है। हालांकि, मुसहर समुदाय से ही संबंध रखने वाले जीतन राम मांझी बिहार के मुख्यमंत्री रह चुके हैं। लेकिन, इससे समाज में इस जाति की वस्तुस्थिति में कोई अंतर नहीं आया।6

बहरहाल, 1990 के पूर्वार्द्ध में उच्च–वर्ग की जातियों (ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत और कायस्थ) ने न केवल सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में स्वयं को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यवस्थित किया, बल्कि नौकरशाही और न्यायपालिका के क्षेत्र में भी अपनी प्रभुता स्थापित की। वर्चस्व स्थापित करने की इस प्रवृत्ति ने उच्च–वर्ग की जातियों को अन्य कार्यों में रत होने को प्रेरित किया। इसलिए उच्च जातियों पर ही यह दोषारोपण होता है कि उन्होंने अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए न केवल बिहार के अनेक संस्थानों को स्वयं के लिए अनुकूल बनाने का प्रयास किया, वरन उन्होंने भूमि–सुधार संबंधी प्रावधानों को अवैधानिक रूप से तोड़ा–मरोड़ा। इस प्रकार सामाजिक अस्मिता या पहचान के लिए जाति एक अनिवार्य तथा स्थाई तत्व रही है। तात्पर्य यह कि जाति के नाम पर पहचाने जाने या पहचान बनाना एक ऐसी स्थिर तथा पुरानी प्रणाली रही है, जो सूबे से अपरिहार्य–सी रही है, 'सर्वस्वीकृत' रही है। वस्तुतः धीरे–धीरे यह सामाजिक–राजनीतिक संगठन के एक आधार के रूप में परिणित हो गया है, 1931 के जनगणना के अनुसार, उच्चवर्गीय जाति के हिंदु कुल जनसंख्या के मात्र 13 प्रतिशत है। जनसंख्या के दृष्टिकोण से वे अति पिछड़ी जातियों की अपेक्षा बहुत ही कमतर हैं। किन्तु, ये वही जातियाँ हैं, जिन्होंने राज्य के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन में अपनी प्रभावशीलता तथा प्रभुता स्थापित की है। कृषि–योग्य भूमि में बड़ी हिस्सेदारी, नौकरशाही में अपेक्षाकृत अधिक प्रतिनिधित्व, शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन एवं बड़े कारोबार और अभी हाल ही तक सत्ता में बने रहने के कारण ही ये जातियां वस्तुतः सही अर्थों में तथा परंपरागत रूप से भी समाज के सर्वाधिक प्रभुत्वशाली हिस्सा रहे हैं।7

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि न तो उच्च जातियां और न ही अन्य पिछड़ी जातियाँ एक अखंड समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि वे विभिन्न 'जातियों' के संपुंजन या मिलने से बने हाते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि एक जाति वर्ग में कई जातियाँ होती हैं और उनके मिलने से एक जाति के वर्ग का निर्माण होता है। यहां तक कि ये समूह राजनीतिक रूप में भी विभाजित होते हैं और कभी–कभी एक ऐसे राजनीतिक दल के लिए मतदान करते हैं, जिनके साथ वे राजनीतिक रूप से जुड़े हुए नहीं माने जाते। उदाहरण के लिए, ऊपरी जाति के मतदान बार–बार राजद (राजद) उम्मीदवार के लिए मतदान (वोट) कर सकते हैं और भाजपा के उम्मीदवार को नजरअंदाज कर सकते हैं, यदि वह अपनी जाति का नहीं हुआ। इसलिए यह स्पष्ट है कि कभी–कभी मतदान करने के दौरान मतदाताओं के व्यवहार या रूझान में परिवर्तन या रूपांतर हो सकता है और ऐसी भी संभावना बन सकती है और निश्चित रूप से इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस प्रकार के परिवर्तन या रूपांतर पूर्व में स्थापित परंपराओं या मानकों के प्रतिकूल हों।

बहरहाल, राजपूत, भूमिहार, ब्राह्मण और कायस्थ जहां उच्च जातियों का प्रतिनिधित्व करते हैं अर्थात इन चार जातियों के समूह से ही उच्च–जातियों का वर्ग निर्मित होता है, वहां जातियों की एक बड़ी संख्या अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के रूप में वर्गीकृत की गयी है। यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी जातियाँ अन्य पिछड़े वर्ग (ओबीसी) के उच्च पायदान पर है; जबकि कहार, कुम्हार, लोहार, तांती, तेली और धानुक इसी ओबीसी वर्ग के निम्नतम पायदान पर रहनेवाली जातियाँ हैं। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी ऊपरी और निचली जातियाँ हैं। प्रश्न यह है कि क्या इन तीन जाति–समूहों (उंची जातियाँ, अन्य पिछड़े वर्ग और मुस्लिम) के भीतर विभिन्न 'जातियों' के मतदान करने के तरीकों में

किसी प्रकार की कोई पूर्व–निश्चित समानता दिखती है, जबकि उनके बीच में व्यापक सामाजिक और आर्थिक असमानता है? प्रश्न यह है कि क्या इन जाति–समूहों ने अपने बीच सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में व्यापक अंतर होते हुए भी मतदान करते समय रूझानों और प्रतिरूपों तथा अपने 'व्यवहार' के चयन में समान प्रवृतियों का प्रदर्शन किया है? यह प्रश्न इसलिए भी अधिक विचारणीय है, क्योंकि हमेशा से ही समाज के तथाकथित संभ्रांत और समृद्ध वर्ग के मतदाता अलग–अलग लीक पर मतदान करते रहे हैं। इस प्रकार की प्रवृति कुछ समय से इस वर्ग के मतदान करने संबंधी 'व्यवहार' में भी लक्षित होती रही है। जैसे कि पिछड़ी जाति के वे मतदाता, जो अमीर और समृद्ध है, कभी–कभी चुनावों के दौरान भाजपा को पसंद करते हैं।

–: संदर्भ :–

1. दास, अरविंद, (1992), दि रिपब्लिक ऑफ बिहार, दिल्ली : पेम्पुइन बुक्स।
2. बिहार, एचडब्ल्यू (1980), राइजिंग कूलाक्स एंड बेकवर्ड क्लासेज इन बिहार, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 15 (2), 64–74 ।
3. जाफेलॉट, सी. (2003), इन्डिया स साइलेन्ट रिवोलूशन : दि राइज ऑफ दि लोअर कॉस्ट्स इन नॉर्थ इन्डिया, नन्दन, सी. हर्स्ट एंड को ।
4. शर्मा, एन (2005), अग्रेरियअन रिलेशन्स एंड सोशिओ–इकोनॉमिक चेन्ज इन बिहार, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 40 (10), 960–972 ।
5. प्रसाद पी. एच. (1975), अग्रेरिअन अनरेस्ट एंड इकोनॉमिक चेंज इन रूरल बिहारः दि थ्री केस स्टडीज, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 10 (24), 931–937 ।
6. सिन्हा, ए. (1996), सोशल मोबलाइजेशन इन बिहारः ब्यूरोकेटिक फ्यूडलिज्म एंड डिस्ट्रीब्यूटिव जस्टिम, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 31 (51), 3287–3289 ।
7. रोबीन, सायरिल, (2009), बिहार : दि न्यू स्ट्रान्गहोल्ड ऑफ ओबीसी पॉलिटिक्स इन दि राइज ऑफ दि एनोबियन्स दि चेन्जिन्ग फेस ऑफ इन्डियन लेजिसलेटिव असेम्बलीज, नई दिल्ली।

*Corresponding Author: सारंग तनय